International Journal of Advanced Educational Research
ISSN: 2455-6157
Impact Factor: RJIF 5.12
www.educationjournal.org
Volume 3; Issue 2; March 2018; Page No. 456-458

आचार्य चाणक्य के दार्शनिक विचार एवं वर्तमान मे उनकी प्रासंगिकता

अनुराधा लवानिया
शोधार्थी, बरकतउल्ला विश्वविद्यालय, भोपाल, मध्य प्रदेश, भारत।

प्रस्तावना

शिक्षा का अध्ययन यदि इतिहास की आंखों से किया जाए तो वर्तमान शिक्षा प्रणाली को दिशा मिल सकती है। इतिहास का परिप्रेक्ष्य शैक्षिक समस्याओं के अध्ययन के लिये वस्तुनिष्ठता प्रदान करता है। शिक्षा के विकास, शिक्षा के वंशक्रम और शिक्षा की संस्कृति का अध्ययन विचार के नये द्वार खोलता है।

अनुभव अथवा व्यवहार करते समय अनेक समस्याएँ हमारे सम्मुख उपस्थित होती हैं, इन समस्याओं पर चिंतन करके उनके आधार पर सिद्धान्तों का निरूपण करना दर्शन का कार्य होता है। इसके अतिरिक्त शिक्षा भी जीवन का एक बडा पक्ष है, और जीवन के मौलिक प्रश्नों से शिक्षा के प्रश्न अंततः जुडे हुए हैं। जीवन के मौलिक प्रश्नों की व्याख्या यह दर्शन कराता है।

भारतीय जीवन में शिक्षा की प्रक्रिया एक साधना थी जिसमें ज्ञान का विस्तार व्यापक, आत्मा के स्वरूप की खोज, आत्मा और ब्रह्म के तादात्मय का प्रयास, जगत, जीव, शरीर, मन, आत्मा का समग्र यथार्थ प्रकाशन पाया गया। इससे विभिन्न भारतीय दार्शनिक विचारधाराएँ फैलीं जो आज तक अध्ययन की जा रहीं हैं। इन विभिन्न दार्शनिक विचाराधाराओं में प्राचीन और मध्यकाल का चिंतन एवं शिक्षण पद्धतियां हैं।

प्राचीन काल में शिक्षा का उद्देश्य ईश्वर भक्ति, धर्मविश्वास, चरित्र–निर्माण, व्यक्तित्व का विकास, सामाजिक कर्त्तव्यों का निर्माण था। शिक्षा केवल पुस्तकों तक ही सीमित नहीं थी, उसका ज्ञान क्रियारूप में आवश्यक था। जो मनुष्य केवल शास्त्र देखता था, उसके अनुसार कार्य नहीं करता था, उसे मूर्ख की संज्ञा दी जाती थी।

भारत की प्राचीन शिक्षा प्रणाली ने विशाल शैक्षिक साहित्य को सुरक्षित रखा और ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में मौलिक विचरणों एवं विद्वानों को जन्म दिया। इन्हीं विद्वानों में एक थे – चाणक्य।

आचार्य चाणक्य के शैक्षिक दर्शन के अनुसार मनुष्य सामाजिक विषमताओं जैसे हिंसाचार, स्वार्थ, अत्याचार, आत्मघात, गुटबाजी की राजनीति आदि के चंगुल में फँसकर असंबद्ध और अंधापन का जीवन जी रहा है। सामाजिक विषमताओं से मोक्ष की आकांक्षा आज के व्यक्ति का एक आवश्यक और अनिवार्य साध्य का विषय है। जीवन में आस्था जगाने के लिए, जीवन को उन्नतिपूर्ण बनाने के लिए तथा एक आन्तरिक अनुशासन को पुनर्जागृत करने के लिए चाणक्य का शैक्षिक दर्शन आज भी सार्थक सिद्ध होता है।

अतः आचार्य चाणक्य के शैक्षिक दर्शन के अनुसार शिक्षा या ज्ञान के द्वारा ही जीवन के अंतिम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति की जा सकती है।

समस्या अभिकथन

"आचार्य चाणक्य का शिक्षा दर्शन एवं वर्तमान परिप्रेक्ष्य में उसकी प्रासंगिकता – एक अध्ययन"

शोध के उद्देश्य

1. आचार्य चाणक्य के जीवन दर्शन एवं तात्कालिक परिस्थितियों का अध्ययन करना।
2. आचार्य चाणक्य के दार्शनिक विचारों एवं वर्तमान परिप्रेक्ष्य में उनकी प्रासंगिकता का अध्ययन करना।

शोध विधि

शोधकर्त्री ने अपने सम्बन्धित अध्ययन हेतु दार्शनिक अनुसंधान विधि को स्वीकार किया है।

आचार्य चाणक्य के दार्शनिक विचार एवं वर्तमान परिप्रेक्ष्य में उनकी प्रासंगिकता

अ) आचार्य चाणक्य के शैक्षिक श्लोकों व सूत्रों में तत्त्व मीमांसा –

1. **ब्रह्माण्ड का स्वरूप –** आचार्य चाणक्य ने समस्त सृष्टि को ब्रह्माण्ड माना है, वही उसका कर्त्ता है और वही उसका उपदान कारक है। आचार्य चाणक्य ने भगवान विष्णु को ब्रह्माण्ड के तीनों लोकों का स्वामी बताते हुए उनकी चरणवंदना की है। ब्रह्माा द्वारा निर्मित यह जगत बनता और बिगड़ता रहता है। अतः यह नित्य नहीं है और जो नित्य नहीं है वह सत्य कैसे हो सकता है? अतः तत्त्व मीमांसा में ब्रह्माण्ड को परिवर्तनशील बताया गया है।
2. **ईश्वर का स्वरूप –** आचार्य चाणक्य ने ईश्वर को परमशक्ति के रूप में स्वीकार किया है। चाणक्य ने अपने ग्रन्थों में ईश्वर को भगवान श्री विष्णु माना है जो अनादि व अनन्त हैं, नित्य व सत्य हैं, सर्वज्ञा और सर्वव्यापक हैं और निराकार व सर्वशक्तिमान हैं। ईश्वर के रूप में वह विष्णु को सबसे बड़ा मानते हुए इस जगत के बारे में कहते हैं कि यह जगत् मायाजाल नहीं है। यह तो ईश्वर की श्रेष्ठ रचना है जो सत्य है और वास्तविक है।

   चाणक्य ने अपनी चाणक्य नीति में कहा है –

   काष्ठं कल्पतरूः सुमेरूरचलश्चिन्तामणिः प्रस्तरः
   सूर्यस्तीव्रकरः शशी क्षयकरः क्षारो हि वारान्निधिः।
   कामो नष्टतनुर्बलिदितिसुतो नित्यं पशुः कामगौनेतांस्ते
   तुलयामि भो रघुपते कस्योपमा दीयते।।

   कल्पवृक्ष काष्ठ मात्र है, सुमेरू पर्वत अचल पहाड़ है, चिन्तामणि पत्थर मात्र है। सूर्य किरणों में उगता है, चन्द्रमा की किरणें क्षीण हैं, सागर का जल खारा है। कमजोर शरीर किसी काम का नहीं बल्कि दैत्य है। कामधेनु पशु है। इस कारण हे राम! इन सब के साथ आपकी तुलना नहीं हो सकती है, फिर किससे आपकी उपमा दी जाए।

   अर्थात् चाणक्य इस श्लोक के माध्यम से बताते हैं कि ईश्वर की

तुलना किसी से भी नहीं की जा सकती है, ईश्वर वास्तव में अतुलनीय है। अतः ईश्वर का रूप अनन्त रूपों में विद्यमान है। ईश्वर इस संसार के हर पदार्थ में विद्यमान है।

3. **आत्मा का स्वरूप –** आचार्य चाणक्य ने चाणक्य नीति में स्पष्ट किया है कि –

पुष्पे गन्धं तिले तैलं काष्ठेऽग्निं पयसि घृतम्।
इक्षो गुडं तथा देहे पश्याऽऽत्मानं विवेकतः।।

आचार्य चाणक्य कहते हैं हे पुरूष! जिस प्रकार फूल में गंध, तिल में तेल, लकड़ी में आग, दूध में घी, ईख में गुड़ होता है, उसी प्रकार विचार करने पर शरीर में आत्मा को पहचानो।

अर्थात् जिस प्रकार गंध, तेल, आग, घी, गुड़ आदि क्रमशः फूल, तिल, लकड़ी, दूध, ईख में बाहर से दिखाई नहीं देते हैं, उनको केवल विचार कर ही जाना जा सकता है। इसी प्रकार शरीर में आत्मा का निवास होता है। इस आत्मा को शरीर से अलग कर नहीं देखा जा सकता है, केवल विचार विवेक के द्वारा ही आत्मा को जाना जा सकता है।

इसके लिए विषय वासना को त्यागकर, तृष्णा को त्यागकर भगवान के प्रति अनुराग लगाकर पूर्ण रूप से उन्हीं के प्रति समर्पित हो जाना चाहिए।

आत्मा के संबंध में चाणक्य ने स्पष्ट किया है कि आत्मा तो शुद्ध ज्ञान का स्वरूप है। आत्मा शुद्ध चेतना है तथा आत्मा सम्पूर्ण आनन्द का मूल स्त्रोत है। आत्मा के आनन्द स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा है कि जो कुछ प्रिय है, जो कुछ आनन्द में है, जो कुछ मूल्यवान है उसका मूल आत्मा ही है।

चाणक्य कहते हैं कि जीवात्मा रूपी मनुष्य ने इस संसार को तो पहचान लिया, लेकिन जिस परमात्मा रूपी ईश्वर ने इस सृष्टि की रचना की है, उसे नहीं पहचाना, अर्थात् जीवात्मा रूपी मनुष्य इस संसार के माया मोह में इस प्रकार फँस गया कि उसे अपने ईश्वर का ही ध्यान नहीं रहा। निम्नांकित उपनिषद् वाक्यों में परमात्मा व आत्मा का अभेद बताया गया है –

i) वह तू है।
ii) मैं ब्रह्मा हूँ।
iii) यह आत्मा परमात्मा है।
iv) परमात्मा ज्ञान का स्वरूप है।

4. **आत्मा–परमात्मा का संबंध –** आचार्य चाणक्य ने आत्मा–परमात्मा के संबंध में चाणक्य नीति में कहा है कि –

अग्निर्देवो द्विजातीनां मुनीनां हृदि दैवतम्।
प्रतिमा स्वल्पबुद्धिनां सर्वत्र समदर्शिनः।।

द्विजातियों का देवता अग्नि है। ज्ञानी लोग अपने हृदय में ही ईश्वर को देखते हैं। परन्तु अल्बुद्धि वाले प्रतिमा को ही ईश्वर समझते हैं तथा समदर्शी सर्वत्र ईश्वर को ही देखते हैं।

अर्थात् आचार्य चाणक्य के अनुसार जो जीवात्मा जिस भगवान की श्रद्धा में विश्वास में विश्वास करती है वही उसका परमपिता परमात्मा होता है। अर्थात् सभी जीवात्माओं रूपी मनुष्य की डोर परमात्मा रूपी ईश्वर के ही हाथ में रहती है। अतः आत्मा–परमात्मा का संबंध अटूट है। जब आत्मा सांसारिक विषय–वासना, तृष्णा को त्यागकर भगवान के प्रति अनुराग लगाकर समर्पित हो जाती है तो वह मोक्ष को प्राप्त कर लेती है तथा परमात्मा में विलीन हो जाती है।

5. **आत्मा की संसार में भूमिका –** आचार्य चाणक्य के अनुसार आत्मा संसार में जन्म से मृत्यु तक विभिन्न अवस्थाओं में चलती रहती है। प्रथम अवसीा में आत्मा सांसारिक मोह में लगती रहती है, जिससे बाहर निकलने का प्रयास मनुष्य करता रहता है। दूसरी अवस्था में आत्मा संसार को छोड़कर मोक्ष की इच्छा प्रकट करती है। इस अवस्था में मनुष्य का भोग विषयों के प्रति लगाव नहीं रहता है। उसका लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति की ओर होता है। तीसरी अवस्था में आत्मा इन सब अवस्थाओं से बाहर निकलकर जन्म–मरण के आवागमन से मुक्ति प्राप्त कर लेती है।

तत्त्व मीमांसा के अन्तर्गत ब्रह्माण्ड नित्य नहीं है और बनता–बिगड़ता रहता है। ब्रह्माण्ड का सीधा संबंध ईश्वर से है। ब्रह्म स्वयं एक ईश्वर है और ईश्वर को जानने के लिए आत्मा व परमात्मा के संबंध का ज्ञान होना जरूरी है, तभी विद्यार्थी आध्यात्मिक जगत के बारे में समझ सकेगा। ब्रह्माण्ड, आत्मा, परमात्मा, ईश्वर, ब्रह्मा आदि सब आध्यात्मिक दर्शन में एक भाग हैं जो व्यक्ति को सही दिशा व लक्ष्य प्राप्ति का मार्ग प्रदान करते हैं। सत्य व वास्तविकता की पहचान विद्यार्थियों को आध्यात्मिक दर्शन में तत्त्व मीमांसा से प्राप्त होती है। आत्मा व संसार का संबंध अत्यंत घनिष्ठ है, जिसमें आत्मा संसार के मोह माया से निकलने के लिए विभिन्न अवस्थाओं में प्रयत्नशील रहती है। अंतिम अवस्था में वह संसार को छोड़कर मोक्ष को प्राप्त करती है। मोक्ष प्राप्ति से वह जन्म–मरण बंधन से मुक्ति प्राप्त कर लेती है।

ब) चाणक्य के शैक्षिक श्लोकों व सूत्रों में ज्ञान मीमांसा

चाणक्य के साहित्यों के शैक्षिक श्लोकों में यह स्वीकार किया गया है कि मानव इस सृष्टि का सबसे विवेकशील व बुद्धिमान प्राणी है और वही जीवन की वास्तविकता और सत्य को समझने वाला है। सत्य अर्थात् कल्याण के लिए जो हितकारी होता है, वही सत्य होता है। जो वस्तु जिस रूप में है उसका उसी रूप में पहचाना जाना सत्य है। इस साररहित संसार में सत्य ही साररूप है। यह सत्य की महिमा है कि हम अपने समाज के मनुष्यों पर विश्वास करते हैं। यही कारण है कि दुनिया के सभी विद्वान अपने धर्म में सत्य को श्रेष्ठ मानते हैं। सामान्य प्राणी इस संसार में जन्म ग्रहण करते हैं और मृत्यु को प्राप्त होते हैं। सृष्टि का यह एक सामान्य कार्यक्रम है। जो व्यक्ति इस संसार में जन्म लेकर समाज में अपना योगदान करता है, समाज हित में कुछ कार्य करता है और अपने मन में मलिनता को नहीं लाने देता है और लोककल्याण की ओर अग्रसर हो जाता है, उसका जीवन सार्थक सिद्ध हो जाता है। सतपुरूषों की यह विशेषता होती है कि वह अपने मन में स्नेह रूपी रंग चाहे हीन अवस्था को प्राप्त हो जाए लेकिन उसकी चमक किसी प्रकार कम नहीं होने देते हैं। अर्थात् सतपुरूषों का स्वभाव इस प्रकार होता है जिस प्रकार चोल से रंगा हुआ वस्त्र फट जाए लेकिन उसका रंग फीका नहीं पड़ता, उसी प्रकार सद्पुरूषों के प्रेम व्यवहार में उनकी हीन अवस्था को प्राप्त होते हुए भी कमी नहीं आती है। जो व्यक्ति सर्वगुण सम्पन्न होता है उसका किसी गुणहीन द्वारा निरादर करने पर उस निरादर करने वाले की ही जड़ता प्रकट होती है। उस सर्वगुण सम्पन्न व्यक्ति के गुणों की महत्ता नहीं घटती है।

आचार्य चाणक्य ने कहा है कि सत् संगति का प्रभाव मनुष्य पर पड़ता है। जिस प्रकार निरन्तर वेद–पाठ का अध्ययन करने पर भी व्यक्ति इस संसार सागर को पार नहीं कर सका लेकिन एक

साधारण मनुष्य जीवन से वैराग्य रखने वाले साधु संतों की सत् संगति में आकर स्वर्ग को प्राप्त हो गया। अर्थात् हम कह सकते हैं कि संगति का दोष प्रभाव हर व्यक्ति पर पड़ता है।

मनुष्य साधु जनों की संगति पाकर ईश्वर की प्राप्ति कर सकता है और दुष्ट जनों की संगति में पड़कर इस संसार सागर में ही फँसा रहता है।

चाणक्य के अनुसार किसी भी विवेकशील मनुष्य के लिए कर्म की प्रधानता को सर्वश्रेष्ठ माना गया है और कहा गया है कि कर्म करते हुए सुख–दुख सदा ही अप्रभावी रहना चाहिए, क्योंकि असफलता में ही सफलता निहित होती है। किसी वस्तु की चमक से प्रभावित होकर व्यक्ति को उन्मुख नहीं हो जाना चाहिए।

मनुष्य को जीवन की वास्तविकता पहचानते हुए हर परिस्थितियों में धैर्य धारण का परिचय देना ही मनुष्य के लिए उपयुक्त है और मन की शुद्धि ही मनुष्य मात्र के कल्याण की युक्ति है। चाणक्य नीति में कहा गया है –

एमुक्तिमिच्छसि चेतात विषयान्विषवत्यज।
क्षमार्जवं दया शौचं सत्यं पीयूषवत् पिब।।

अर्थात् कहने का तात्पर्य यह है कि विषयों के त्याग और सहिष्णुता, सरलता, दयालुता तथा पवित्रता समस्त गुणों को अपनाकर मनुष्य मोक्ष प्राप्त कर सकता है। अतः मनुष्य को दुर्गुणों का परित्याग करके गुणों–सहनशीलता, दया, क्षमा, शुद्धि को अपनाया जाना चाहिए।

इसी प्रकार चाणक्य नीति में कहा गया है कि –

धर्मे तत्परता मुखे मधुरता दाने समूत्साहता
मित्रेऽवंचता गुरौ विनयता चितेऽतिगंभीरता।
आचारे शुचिता गुणे रसिकता शास्त्रोषु विज्ञातृता
रूपे सुन्दरता शिवे भजनता त्वय्यस्ति हे राघव।।

अर्थात् धर्म के कार्य में तत्परता, वाणी में मधुरता, दान में अत्यधिक उत्साह, व्यवहार में अटलता, अपने से बड़ों के प्रति नम्रता, हृदय में गंभीरता, आचार–विचार में पवित्रता, गुण में रसिकता, शास्त्रों की आधिकारिक व्याख्या और अद्वितीय रूप के साथ भक्ति, ये सभी गुण एक मनुष्य, विद्यार्थी के अन्दर होने चाहिए।

अतः चाणक्य के अनुसार ज्ञान ही मुक्ति का मार्ग है और आत्मसंतोष ही इस संसार का सबसे बड़ा धन है।

स) चाणक्य के शैक्षिक श्लोकों व सूत्रों में मूल्य मीमांसा

1. मनुष्य को ईश्वर के प्रति समर्पण भाव रखते हुए उसमें निष्ठा रखनी चाहिए। मनुष्य को सहृदयता और प्रेमपूर्ण मित्रता के जल से समाज को सिंचित करना चाहिए तथा क्रोध की धूप से सदैव दूर रहना चाहिए।
2. मनुष्य को सदेव सत्संगति में रहने का प्रयास करना चाहिए, क्योंकि सत्संगति ही मुक्ति की युक्ति है।
3. मनुष्य को सांसारिक विषयवासनाओं में लिप्त न रहकर मोक्ष प्राप्ति को ही परम लक्ष्य मानना चाहिए।
4. निश्च्छल प्रेम की भावना सृष्टि के हर प्राणी में होनी चाहिए। उसके प्रेम के पीछे स्वार्थपरता नहीं होनी चाहिए।
5. मनुष्य को कर्त्तव्यबोध की ओर रहने का संदेश भी दिया है।
6. किसी भी व्यक्ति को छोटा नहीं समझना चाहिए। समय पड़ने पर वही छोटे से छोटा व्यक्ति भी बड़ा साधन सिद्ध हो सकता है।
7. श्रेष्ठ गुणी व्यक्ति का सदैव सम्मान करना चाहिए और निकृष्ट प्रवृत्ति के लोगों से मनुष्य को हमेशा दूर रहना चाहिए।
8. मनुष्य को दुख व असफलता मिलने पर निराश नहीं होना चाहिए, हमेशा आशावादी दृष्टिकोण रखना चाहिए।
9. मनुष्य में सूक्ष्म निरीक्षण की शक्ति होनी चाहिए जिससे कि वह अपने प्रति अनुरूप परिवर्तित होती परिस्थितियों को पहचान सके और उसके अनुरूप व्यवहार कर सके।
10. प्रशंसा प्राप्त करके व्यक्ति बड़ा नहीं बन सकता। अतः प्रशंसा को अंतिम सत्य न मानते हुए गुणों के विकास पर बल दें या गुणों को अपने अन्दर विकसित करें।
11. व्यक्ति को अपने सामने वाले के गुणों को महत्त्व न देकर उसके प्रति निश्च्छल प्रेमभाव रखना चाहिए।
12. मनुष्य को यह ध्यान रखना चाहिए कि आत्मसंतोष ही संसार का सबसे बड़ा धन है अर्थात् मनुष्य को हर परिस्थितियों में धैर्य का परिचय देना चाहिए।
13. दुर्जन प्रवृत्ति के व्यक्ति के व्यवहार में चाहे कोई लाख प्रयास करे लेकिन परिवर्तन नहीं हो सकता अर्थात् जिस प्रकार हींग को कपूर में रखने से उसमें सुगन्ध नहीं हो सकती, उसी प्रकार दुर्जन प्रवृत्ति के व्यक्ति के व्यवहार में सत्संगति से परिवर्तन नहीं हो सकता है।
14. व्यक्ति को लक्ष्य प्राप्ति हेतु चकौरी के समान प्रयत्न करना चाहिए कि देशकाल और वातावरण के प्रभाव से उसके यत्न में कोई कमी नहीं आनी चाहिए।
15. मनुष्य को ज्ञान प्राप्ति के लिए खोजी प्रवृत्ति का होना चाहिए और ज्ञान प्राप्ति के प्रति उसकी तृष्णा कभी कम नहीं होनी चाहिए।
16. व्यक्ति कितने भी श्रेष्ठ पद को प्राप्त हो जाए उसमें अहम् भाव नहीं आना चाहिए। विनम्रता ही व्यक्ति की सफलता का मार्ग प्रस्तुत करती है।

सन्दर्भ

1. आचार्य मानिक– चाणक्य नीति, साधना पब्लिकेशन दिल्ली, 2014।
2. कीश, ए.बी.– वैदिक धर्म एवं दर्शन, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, 1963।
3. दास, राधावल्लभ– चाणक्य नीति एवं व्यव्हार शास्त्र, चिल्ड्रन बुक सेन्टर, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2011।